IJAER/April-May 2014/Volume-3/Issue-3 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

धर्मवीर के उपन्यासों का शिल्प विधान

डॉ. लोकेश कुमार शर्मा

व्याख्याता (हिन्दी साहित्य)

राजकीय महाविद्यालय टोंक (राज.)

सारांश

इस खंड की सबसे पहली इकाई कथाकार धर्मवीर भारती के साहित्यिक अवदान विशेषतरू उनके विशिष्ट उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के इर्द–गिर्द बुनी गई है। इस इकाई में हम आपको हिन्दी उपन्यासधारा के भावपरक उपन्यासों का भी परिचय देंगे, जिससे कथाकार धर्मवीर भारती भी जुड़ते हैं। उनके समूचे कथा साहित्य में एक तरफ गलदश्रु पूर्ण भावुकता और रोमानी प्रवृत्ति, तो दूसरी ओर इन्हीं से आच्छादित जीवन की विसंगतियों, विडम्बनाओं और करुण मानव स्थितियों के चित्र भी हैं। यह सही है कि सामाजिक रूढ़ियों, विधि निषेधों पर चोट करने वाले व्यक्ति स्वातंर्त्य की भावना भारती के साहित्य के केन्द्र में रही है, लेकिन इस स्वातंर्त्य की प्रकृति और दिशा प्रायरू आच्छन्न ही दिखाई देती है। 'गुनाहों का देवताश के चन्दर और सुधा तथा श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश के . माणिक मुल्ला और सत्ती में कहीं भी इस स्वातंर्त्य की दिशा का संकेत नहीं हो पाया है। सर्वत्र अन्तिम परिणति विफलता, हताशा और त्रासदी के रूप में ही सामने आती है। अपनी कहानियों से लेकर दोनों उपन्यासों में भारती जी का ध्यान कथन–शिल्प पर अपेक्षाकृत अधिक रहा है, जो विषय और अन्तर्वस्तु की सघनता को प्रायरू क्षतिग्रस्त ही करता है। जहाँ तक श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश का प्रश्न है, इसकी चर्चा का केन्द्र शिल्प संबंधी वैशिष्ट्य ही रहा है, इस तथ्य को इस इकाई में विशेष रूप से रेखांकित किया गया है।

कीवर्ड : *धर्मवीर , उपन्यासों*

प्रस्तावना

हिन्दी उपन्यास 13 के अन्तर्गत आपने अभी तक उपन्यास के सामान्य स्वरूप और उसके विकास की जानकारी प्राप्त कर ली होगी। इसी के साथ आपको हिन्दी उपन्यास साहित्य की विशिष्टता का परिचय भी मिल गया होगा। स्वाधीनता पूर्व उत्तर भारत के जनजीवन के सामाजिक यथार्थ से सम्बद्ध हिन्दी उपन्यास का अध्ययन भी आपने कर लिया होगा। अब पाठ्यक्रम 15 के अन्तर्गत आप प्रेमचंद परवर्ती उपन्यासकारों जैसे यशपाल, धर्मवीर भारती, कृष्णा सोबती और श्रीलाल शुक्ल के प्रमुख उपन्यासों का विशिष्ट अध्ययन कर रहे हैं। इनके माध्यम से आप स्वातंत्रयोत्तर भारत के निरंतर जटिल होते जीवन यथार्थ का अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत खंड हिन्दी के यशस्वी कवि–कथाकार धर्मवीर भारती के महत्त्वपूर्ण उपन्यास श्सूरज का सातवाँ घोड़ा' पर केन्द्रित है। इस खंड की सबसे पहली इकाई कथाकार धर्मवीर भारती के साहित्यिक अवदान विशेषतरू उनके विशिष्ट उपन्यास श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश के इर्द–गिर्द बुनी गई है। इस इकाई में हम आपको हिन्दी उपन्यासधारा के भावपरक उपन्यासों का भी परिचय देंगे, जिससे कथाकार धर्मवीर भारती भी जुड़ते हैं।

उद्देश्य

1ण धर्मवीर भारती के कहानीकार रूप का परिचय प्राप्त कर सकेंगेय
2ण भारती के प्रथम उपन्यास श्गुनाहों के देवताश के वैशिष्ट्य को समझा सकेंगेय

जीवन परिचय

धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसंबर 1926 को इलाहाबाद के अतर सुइया मुहल्ले में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री चिरंजीव लाल वर्मा और माँ का श्रीमती चंदादेवी था। स्कूली शिक्षा डी. ए वी हाई स्कूल में हुई और उच्च शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में। प्रथम श्रेणी में एम ए करने के बाद डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में सिद्ध साहित्य पर शोध–प्रबंध लिखकर उन्होंने पी–एच०डी० प्राप्त की।

घर और स्कूल से प्राप्त आर्यसमाजी संस्कार, इलाहाबाद और विश्वविद्यालय का साहित्यिक वातावरण, देश भर में होने वाली राजनैतिक हलचलें, बाल्यावस्था में ही पिता की मृत्यु और उससे उत्पन्न आर्थिक संकट इन सबने उन्हें अतिसंवेदनशील, तर्कशील बना दिया। उन्हें जीवन में दो ही शौक थे रू अध्ययन और यात्रा। भारती के साहित्य में उनके विशद अध्ययन और यात्रा–अनुभवों का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता हैरू जानने की प्रक्रिया में होने और जीने की प्रक्रिया में जानने वाला मिजाज जिन लोगों का है उनमें मैं अपने को पाता हूँ। (ठेले पर हिमालय)

उन्हें आर्यसमाज की चिंतन और तर्कशैली भी प्रभावित करती है और रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत। प्रसाद और शरत्चन्द्र का साहित्य उन्हें विशेष प्रिय था। आर्थिक विकास के लिए मार्क्स के सिद्धांत उनके आदर्श थे परंतु मार्क्सवादियों की अधीरता और मताग्रहता उन्हें अप्रिय थे। 'सिद्ध साहित्य' उनके शोध' का विषय था, उनके सटजिया सिद्धांत से वे विशेष रूप से प्रभावित थे। पश्चिमी साहित्यकारों में शीले और आस्करवाइल्ड उन्हें विशेष प्रिय थे। भारती को फूलों का बेहद शौक था। उनके साहित्य मंन भी फूलों से संबंधित बिंब प्रचुरमात्रा में मिलते हैं।

आलोचकों में भारती जी को प्रेम और रोमांस का रचनाकार माना है। उनकी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों में प्रेम और रोमांस का यह तत्व स्पष्ट रूप से मौजूद है। परंतु उसके साथ–साथ इतिहास और समकालीन स्थितियों पर भी उनकी पैनी दृष्टि रही है जिसके संकेत उनकी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, आलोचना तथा संपादकीयों में स्पष्ट देखे जा सकते हैं। उनकी कहानियों–उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ के चित्रा हैं 'अंधा युग' में स्वातंत्रयोत्तर भारत में आई मूल्यहीनता के प्रति चिंता है। उनका बल पूर्व और पश्चिम के मूल्यों, जीवन–शैली और मानसिकता के संतुलन पर है, वे न तो किसी एक का अंधा विरोध करते हैं न अंधा समर्थन, परंतु क्या स्वीकार करना और क्या त्यागना है इसके लिए व्यक्ति और समाज की प्रगति को ही आधार बनाना होगा–पश्चिम का अंधानुकरण करने की कोई जरूरत नहीं है, पर पश्चिम के विरोध के नाम पर मध्यकाल में तिरस्कृत मूल्यों को भी अपनाने की जरूरत नहीं है।

उनकी दृष्टि में वर्तमान को सुधारने और भविष्य को सुखमय बनाने के लिए आम जनता के दुःख दर्द को समझने और उसे दूर करने की आवश्यकता है। दुःख तो उन्हें इस बात का है कि आज 'जनतंत्र' में 'तंत्र' शक्तिशाली लोगों के हाथों में चला गया है और 'जन' की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। अपनी रचनाओं के माध्यम से इसी 'जन' की आशाओं, आकांक्षाओं, विवशताओं, कष्टों को अभिव्यक्ति देने का प्रयास उन्होंने किया है।

कार्यक्षेत्र रू अध्यापन। १६४८ में 'संगम' सम्पादक श्री इलाचंद्र जोशी में सहकारी संपादक नियुक्त हुए। दो वर्ष वहाँ काम करने के बाद हिन्दुस्तानी अकादमी में अध्यापक नियुक्त हुए। सन् १६६० तक कार्य किया। प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान 'हिंदी साहित्य कोश' के सम्पादन में सहयोग दिया। निकष' पत्रिका निकाली तथा श्आलोचनाश का सम्पादन भी किया। उसके बाद श्धर्मयुगश में प्रधान सम्पादक पद पर बम्बई आ गये।

सूक्ष्म अनुभवपरक धारा के उपन्यास

यहाँ सर्वप्रथम यह बताना जरूरी है कि प्रेमचंद युगीन और प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों की एक धारा ने जहाँ सामाजिक–ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के उपन्यास लिखे वहीं जैनेंद्र, इलाचंद जोशी, अज्ञेय आदि ने एक दूसरी धारा का प्रवर्तन किया। इस धारा के उपन्यासकारों ने समाज की अपेक्षा व्यक्तिमन की सूक्ष्म समस्याओं को अपने उपन्यासों का केन्द्र बिंदु बनाया। ये कथाकार जीवन यथार्थ और उसके संघर्ष की अपेक्षा व्यक्ति की मनरूस्थितियों और मनोभावनाओं की गहराइयों से डूबते–उतरते हुए प्रेम और नैतिकता के प्रश्नों से उलझते हैं।

प्रेमचंद के समय मंम ही ऐसी प्रवृत्तियों की कहानियों के लेखन की शुरुआत छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद के द्वारा हो चुकी थी। धर्मवीर भारती ने भी अपने कहानी उपन्यासों में इन्हीं मनोभावनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों को उभारने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य के कुछ इतिहासकारों ने इसे मनोवैज्ञानिक अथवा मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास कहा तो कुछ ने इसे सूक्ष्म अनुभवपरक धारा का उपन्यास माना। प्रश्न है कि अनेक प्रकार की उथल–पुथल से भरे राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के समय की समस्याओं की अपेक्षा व्यक्तिमन की गहराइयों की ओर ले जाने वाली ये रोमानी प्रवृत्तियाँ कितनी हमारे सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों के बीच से उपज रही थीं तथा कितनी वे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवों विचारधाराओं से प्रभावित हो एक प्रकार के अमूर्त साहित्य का सृजन कर रही थी। आइए, अब हम धर्मवीर भारती के समय में लिखे जा रहे इस अनुभवपरक कथासंसार का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें।

जैनेन्द्र कुमार–प्रेमचंद के समय से ही अपना अलग रास्ता बनाने वाले कथाकार हैंरू जैनेन्द्र कुमार। उसी समय के आसपास अन्तर्मन के संसार का चित्रण करने वाले कुछ अन्य कथाकार भी दिखाई देने लगते हैं। प्रेमचंद के बाद जो नई धारा हिन्दी में उभरती है उसमें स्वाधीनता आंदोलन और सामंती परिवेश के बीच की समस्याओं बाह्य घटनाओं, परिस्थितियों, संस्कारों में फँसे मनुष्य की विवशता दर्शाना कम तथा व्यक्तिमन, उसकी कुंठाओं की झलक दिखाना अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। ये रचनाकार प्रेम और नैतिकता के उलझे प्रश्नों को उघाड़कर अपने कर्तव्य की इति श्री समझने लगते हैं। 1929 में प्रकाशित अपने पहले उपन्यास 'परख' में जैनेन्द्र कुमार इसी प्रकार की भावभूमि लेकर उपस्थित होते हैं। श्परखश उपन्यास की भूमिका में स्वतंत्रता को 'एक कीमती चीजश मानते हुए वे लिखते हुए हैं रू श्वह उपन्यास किसी काम का नहीं, जो इतिहास की तरह घटनाओं का बखान कर जाता है।श यानी प्रेमचंद की औपन्यासिक दुनिया, उसकी घटना बहुलता, परिस्थितियों और उनमें बनते–बिगड़ते उस समय के वास्तविक मनुष्य के चित्रण को जैनेन्द्र बहुत महत्व का नहीं मानते।

वे लिखते हैं कि उपन्यास को वास्तविकता पर नहीं उससे ऊँचे पर होना होगा। उपन्यास वास्तविक होने के लिए नहीं है। यह वास्तविक होना नहीं चाहिए। वास्तविक होने की कोशिश करके वह अपने को निरर्थक ही कर सकता है।स्पष्ट है कि वास्तविक चित्रण में वे मानवीय अर्थवत्ता के दर्शन नहीं करते। उनके लिए महत्वपूर्ण हैरू श्स्वतंत्रताश। वे अपने उपन्यास को देश, घटना और इतिहास के शिकंजे से मुक्त कर एक नया अनुभव आलोक गढ़ते हैं। जहाँ घटनाओं की बजाय भावों के आसंग और उसी तरह के प्रसंगों पर अधिक बल होता है। बात साफ है कि जैनेन्द्र के कथा धर्मवीर भारतीय का कथा साहित्य और श्सूरज का सातवाँ घोड़ा संसार में जीवन–जगत के स्थूल प्रसंग तथा संघर्ष और द्वन्द्व कोई मायने नहीं रखते। बल्कि वे अपना अर्थ खोने लगते हैं। उनकी अर्थवत्ता के केन्द्र में जा जाता हैरू भाव संसार। ऐसे उपन्यासों की कथावस्तु भी भाववादी–देश कालातीतवादी हो जाती है। उपन्यासकार निर्द्वन्द्व होकर व्यक्तिमन की गहराइयों का अवगाहन और उसके चित्रण में रम जाता है। देशकाल से कटकर वह अपनी बहुत कुछ स्वायत्त दुनिया गढ़ लेता है। इस प्रकार चौथे–पाँचवे दशक में रचनाकारों की एक ऐसी पंक्ति प्रकाश में आती है जो बाहरी दुनिया से कटकर अन्तर्मन की कुहेलिकाओं को उजागर करना अपना लक्ष्य बना लेती है। इस धारा को जैनेन्द्रजी के साथ आगे बढ़ाने में इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय तथा बाद में भारती, डॉ देवराज, प्रभाकर माचवे आदि रचनाकार अपना योगदान करते दिखाई देते हैं।

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से निरंतर सचेत होते जा रहे भारतीय समाज के बीच नए उभरते संसार, अपेक्षाकृत मुक्त स्त्री–पुरुष संबंधों की गहरी छानबीन को जैनेन्द्र अपने उपन्यासों का विषय बनाते हैं।

उनके प्राय: सभी उपन्यास समाज निरपेक्ष किंतु प्रेम केन्द्रित हैं और किसी–न–किसी रूप में नैतिक–अनैतिक के द्वन्द्व का सामना करते मानवीय करुणा को उभारते पाए जाते हैं। जैनेन्द्र कमार के उपन्यास एक ओर यथार्थवादी उपन्यास धारा को चुनौती देते हैं तो दूसरी ओर रूढ़ नैतिकताओं वाले खोखले सामाजिक आदर्शों की खिल्ली उड़ाते हैं। इस तरह वे एक नए आदर्शवाद की स्थापना करते हैं। अक्सर उनके उपन्यासों में प्रेम का एक त्रिकोण विद्यमान होता है। उनके उपन्यासों की नायिका की मुख्य समस्या यह है कि उनका प्रेमी और पति एक व्यक्ति न होकर अलग–अलग दो

व्यक्ति होते हैं। वे जिससे प्रेम करती हैं उससे विवाह नहीं हो पाता और जिससे विवाह होता है उससे प्रेम नहीं कर पातीं। ऐसी स्थिति में उनके पात्रों में अन्त: संघर्ष होना चाहिए था, पर जैनेन्द्र संघर्ष न कर के समन्वय का रास्ता अपनाते हैं। उस स्थिति को नियति मानकर मानसिक संतुलन बिगड़ने नहीं देते। चाहे . श्परखश, श्सुनीताश या त्यागपत्रश उपन्यास हों या परवर्ती उपन्यास 'सुखदा', 'विवर्त' और 'व्यतीत'। जैनेन्द्र के इन सभी उपन्यासों की नायिकाएँ अपने प्रेम के प्रति आश्वस्त नहीं हो पातीं। सदियों से चली आती अपनी रूढ़ नैतिकताओं के जाल में जकड़ी अपने पति से उदासीन और प्रेमी के प्रति आकृष्ट होना चाहकर भी सामान्य नहीं हो पातीं। कोई चीज आड़े आ जाती है। इस प्रकार स्त्री–पुरुष संबंधों में प्रेम या यौन भावनाओं की कुंठाओं को लेकर अपने उपन्यासों का वस्तुसंसार निर्मित करते हैं जो प्रायरू घर तथा स्त्री–पुरुष प्रेम तक ही सीमित रह जाता है। इससे आगे का संसार खोजना जैनेन्द्र के लिए अभीप्सित नहीं है। इसलिए इनके उपन्यास प्रायरू आकार में छोटे होते हैं। .

इलाचंद्र जोशी– इस श्रृंखला में दूसरे महत्वपूर्ण रचनाकार हैं श्री इलाचंद्र जोशी (1902 82)। अपने प्रारंभिक उपन्यासों में इन्होंने व्यक्तिमन की समस्याओं का चित्रण किया है। इनकी धारणा है कि व्यक्ति के जीवन में घटित छोटी–से–छोटी घटना के पीछे उसकी मानसिकता में चल रही उधेड़बुन होती है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। श्जहाज के पंछीश उपन्यास में उन्होंने लिखा है रू "इन्हीं छोटी–छोटी बातों पर गौर करते रहने से जीवन के बड़े महत्वपूर्ण किंतु उलझे हुए रहस्य सुलझते चल जाते हैं।ष इनका पहला उपन्यास श्घृणामयीश लगभग जैनेन्द्र कुमार के परखश के साथ प्रकाशित हुआ पर उन्हें उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा मिली "संन्यासी (1941) लिखने के बाद। प्रत और छायाश (1944), मुक्तिपथ (1952), श्जहाज का पंछीश (1956), 'सुबह के भूलेश (1951), 'जिप्सी' (1952), भूत का भविष्य (1973) आदि। इनमें जोशी जी की उपन्यासकला में एक स्वस्थ मोड़ आता दिखाई देता है। यहाँ से वे मनोविज्ञान को सामाजिक उद्देश्य के लिए प्रयोग करना प्रारंभ करते हैं। श्जहाज का पंछीश उपन्यास के कथानायक के माध्यम से कथाकार ने उसे विविध परिस्थितियों में डालकर बाहरी सभ्य जीवन की बनावटी दुनिया को उजागर करने का प्रयत्न किया है। स्वातंत्र्योत्तर युग के आत्मकेन्द्रित होते चले जा रहे स्वार्थान्ध व्यक्ति के ढोंग पर वे प्रहार करते हैं। साथ ही दिखाते हैं कि ऊपर से स्वस्थ और निश्चित दिखने वाला व्यक्ति भीतर से कितना व्यग्र और बेचौन है। वह प्रत्येक स्थिति से जुड़ना चाहता है पर उनसे अपना मानसिक संतुलन नहीं बिठा पाता। अंत में लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ष्आज के समाज में ईमानदारी सबसे बड़ा शत्रु है, सत्य सबसे बड़ा पाप है, धर्म सबसे बड़ा अभाव और जीना सबसे बड़ा अभिशाप है।श्श पर यहाँ भी कथानक में औचित्य और संतुलन की कमी, घटना बहुलता और पात्रों की भरमार इतनी अधिक है कि पाठक पढ़ते–पढ़ते ऊबने लगता है। पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र और इलाचंद्रजोशी ने परम्परा से हटते हुए हिन्दी उपन्यास को एक नई दिशा प्रदान की किंतु श्सभी संभावनाओं की वास्तविक पूर्णता कुछ समय बाद अज्ञेय के कृतित्व में मिली।'

अज्ञेय–अज्ञेय हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा को एक नया मोड़ देते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। श्शेखर एक जीवनीश, (दो भाग) श्नदी के द्वीपश (1951) तथा 'अपने–अपने अजनबीश (1961) श्शेखर एक जीवनीश उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध आत्मकथात्मक उपन्यास है। उसे उत्तम पुरुष में लिखा गया है। इसमें बालक शेखर से युवक शेखर की कथा का विकास है। शेखर अन्तर्मुखी, चिन्तनशील, जिज्ञासु बालक है। वह जन्म, मृत्यु, ईश्वर, युद्ध इत्यादि के बारे में प्रश्न करता है। इनके उसे समुचित उत्तर नहीं मिलते। अतरू उसे अपनी अनेक जिज्ञासाओं और वृत्तियों को दबाना पड़ता है। वस्तुतरू शेखर हिन्दी का ऐसा उपन्यास है जिसमें व्यक्ति के मानस की नड़ी गहराई और सूक्ष्मता के साथ जाँच पड़ताल की गई है। श्आत्मनेपदश में वे लिखते हैं: तो मेरी रुचि व्यक्ति में रही है और है। नदी के द्वीप व्यक्ति चरित्र का ही उपन्यास है घटना उसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से काफी है पर घटना प्रधान उपन्यास वह नहीं है। शेखर की तरह वह परिस्थितियों में विकसित होते हुए एक व्यक्ति का चित्र और उस चित्र के निपित्त से उन परिस्थितियों की आलोचना भी नहीं है। वह व्यक्ति चरित्र का चरित्र के उद्घाटन का उपन्यास है। इस उपन्यास श्नदी के द्वीप' में दो प्रमुख पात्र हैं, नायक भुवन और रेखा। भुवन और उसका मित्र चंद्रमाधव दोनों प्रतिद्वन्द्वी हैं और रेखा को प्राप्त करना चाहते हैं। इस प्रतिद्वंद्विता में सफलता भुवन को मिलती है। किंतु भुवन अन्तत: गोरा के प्रति समर्पित होता है। इसे प्रेम

संबधी सूक्ष्म संवेदनाओं का उपन्यास भी कहा जा सकता है। जैसे श्शेखर एक जीवनीश पर रोमां रोलां का प्रभाव बताया गया है। वैसे ही श्नदी के द्वीप परश डी.एच. लॉरेन्स का।

उनका तीसरा उपन्यास श्अपने–अपने अजनबीश इन दोनों उपन्यासों से भिन्न धरातल पर रच गया दिखाई देता है। इसे कुछ विद्वानों ने अस्तित्ववादी चेतना का उपन्यास माना है। इस उपन्यास के केन्द्र में हैरू मृत्यु। रचनाकार ने इसकी खोज योके और सेल्मा दो पात्रों के माध्यम से की है, जो बर्फ की समाधि में फंसे हुए हैं। उनके बीच चिंतननुमा विवरण का एक लंबा सिलसिला चलता है। कथानक पर दर्शन हावी होने लगता है। इसे अज्ञेय का दार्शनिक ऊहापोह से भरा उपन्यास कहा जा सकता है। दो पात्रों के बीच पसरा हुआ समय समूचे उपन्यास में छाया रहता है। यहाँ दोनों पात्रों की मानसिक स्थितियों का उतार–चढ़ाव भी सूक्ष्मता से अंकित हुआ है।

डॉ. देवराज–इसी क्रम में एक अन्य प्रमुख उपन्यासकार हैंरू देवराज। डॉ. देवराज ने अपने उपन्यासों में शिक्षित बुद्धिजीवी समाज के जीवन की करुण वास्तविक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में व्यक्तिचित्र तो हैं पर वे समाज की सापेक्षता में उपस्थित किए गए हैं। देवराज जी के चार प्रमुख उपन्यास हैं। 'पथ की खोजश (दो भाग–1951) आपका प्रथम उपन्यास है। उसके बाद श्बाहर–भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरीश, का प्रमुखता से नामोल्लेख किया जा सकता है। 'पथ की खोजश का कथ्य है कि शिक्षित समाज ने नए जीवन–मूल्यों को वैचारिक धरातल पर तो अपना .. लिया है पर वे उसे आत्मसात् नहीं कर पाए हैं। वे अपने पुराने संस्कारों की जकड़बंदी से मुक्त नहीं हो पाए हैं। इस उपन्यास के केन्द्र में भी प्रणय संबंध ही हैं पर अज्ञेय के उपन्यासों के समान उनमें आभिजात्य या अलगाव दृष्टिगत नहीं होता। मध्यमवर्ग की बौद्धिकता, साधनहीनता और जीवन यथार्थ की समीपता इससे अधिक चित्रित है। कथानक में विवाह संस्था के विषय में प्रश्नचिह्न लगाया गया है। क्या स्त्री–पुरुष संबंधों का मूलाधार दैनिक संबंध ही है? दांपत्य जीवन का आधार क्या है? बुद्धिजीवी समाज की उन्मुक्तता के ऐसे अनेक प्रश्न 'पथ की खोजश उपन्यास में बड़ी ईमानदारी से उठाए गए हैं।

बाहर–भीतर (1954) उपन्यास देवर–भावी के परस्पर आकर्षण की कहानी कहता है। साथ ही, सामाजिक मर्यादाओं में जकड़े बाहर की जड़ता और भीतर के संघर्षपूर्ण चित्र उपन्यास में जगह–जगह अंकित हुए हैं। अन्ततरू सामाजिक मर्यादाओं के आगे दोनों के टूट–बिखर जाने वाले श्भीतरश पर बाहर की विजय प्रतीकात्मक रूप से दिखाई गई है। रोड़े और पत्थरश (1958) में न विषयवस्तुगत और न ही शिल्प संरचनागत प्रयोग किया गया है। परन्तु मध्यवर्गीय जीवन में मकान बनाने की प्रक्रिया किस प्रकार एक समग्र अनुभूति के रूप में देखी जा सकती है, रोड़े और पत्थरश इसका अच्छा उदाहरण है।

डॉ देवराज का चौथा प्रमुख उपन्यास श्अजय की डायरीश है। यह मूल रूप से एक विश्वविद्यालय के अध्यापक की एक छात्रा के साथ असफल प्रेम की कहानी है, जो डायरीनुमा शैली–शिल्प में लिखी गई है। यह अनमेल विवाह की कहानी नहीं है बल्कि इसमें दिखाया गया है कि पति और पत्नी के जीवन आदर्श भिन्न है। पत्नी को पति की ऊँची शिक्षा, शोध से कोई वास्ता नहीं है। उसे चाहिए भौतिक सुखसुविधाएँ। नौकरी पेशा अजय उसे यह सब नहीं दे पाता। इस प्रकार देवराज यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि आधुनिक शिक्षित समाज किस प्रकार अनेक कुंठाओं और भटकावों का शिकार हो रहा है अजय अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता तो हेम जिससे प्रेम नहीं करती उससे विवाह कर लेती है। स्पष्ट है कि डॉ. देवराज के सभी उपन्यास दर्शन और मनोविज्ञान के धरातल पर अधिक चलते हैं, . व्यापक समाज से उनका अधिक सरोकार दिखाई नहीं देता।

श्री नरेश मेहता–नरेश मेहता के उपन्यास श्डूबते मस्तूलश (1954) में भी मनोवैज्ञानिक समस्या केन्द्र में है। रोमानी किस्म के इस उपन्यास की कहानी सीमाप्रांत से लेकर सुदूर लखनऊ (हौलैंड होते हुए) तक फैली हुई है। इसमें एक आधुनिका को जबरन पकड़कर ले जाया जाना तथा आठ पुरुषों की पत्नी या प्रणयिनी बना देना एक अजीब से अव्यस्थित कथाकृ ति को जन्म देता है। कहानी प्रवाहवादी पद्धति में लिखी गयी है। विषयवस्तु की दृष्टि से अव्यस्थित होते हुए भी उपन्यास 24 घंटे में संपन्न होकर एक नया प्रयोग बन जाता है। यहाँ लेखक मन की गहराइयों का यथार्थ चित्रण करने के स्थान

पर शैली–शिल्प के व्यामोह में अधिक पड़ गया है। इसी कारण यह उपन्यास संभावनागर्भित होते हुए अधूरा रहा जाता है।

इसी प्रकार शैली–शिल्प की दृष्टि से कुछ अन्य प्रयोग भी हुए हैं। प्रभाकर माचवे का द्वाभाश (1955) उपन्यास कथा संगठन और शैली–शिल्प प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण बन पड़ा है। नई शिक्षा और सामाजिक स्वतंत्रता के बावजूद भारतीय नारी की अवश स्थिति उपन्यास की केन्द्रीय समस्या है, जिसे द्वाभा में उपन्यासकार ने एक नई दृष्टि से चित्रित करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास की संरचना भी अलग किस्म की है, जिसमें स्कैच, डायरी, निबंध, कहानी यानी साहित्य के विभिन्न रूपों को लेखक ने एक साथ प्रयोग किया है। इसमें कथानक के अवमूल्यन तथा शिल्प के प्रति अतिरिक्त उत्साह की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। समग्रतरू ये उपन्यास समूचे जन–जीवन की जटिलताओं की अपेक्षा व्यक्तिमन की जटिलताओं पर केन्द्रित रहे हैं। निश्चय ही ये उपन्यास नए अनुभव संसार का उद्घाटन करने वाले तथा उपन्यास–संरचना की दृष्टि से प्रयोगशील माने जा सकते हैं।

धर्मवीर भारती–मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में भारती की प्रतिष्ठा उनके प्रथम उपन्यास श्गुनाहों के देवताश (1949) के कारण हुई। उन्होंने चन्दर और सुधा के सहज आकर्षण–विकर्षण के माध्यम से रोमांटिक प्रेम का चित्रण तो किया ही है, साथ ही यह निष्कर्ष भी निकाला है कि स्नेह और वासना, भावना और शरीर दो नहीं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। शरीर भी उतना ही आवश्यक है जितना कि आत्मा की पुकार। नई पीढ़ी के पाठकों के बीच यह उपन्यास पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद धर्मवीर भारती का दूसरा उपन्यास श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश (1952) प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास रचना शैली की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण बन पड़ा है, उतना विषय वस्तु के रूप में नहीं। हालांकि इसकी कथा निम्नमध्यवर्ग की स्त्रियों की संघर्ष गाथा रही है। परन्तु विद्वानों ने इसकी किस्सागोई के शिल्पप्रयोग की चर्चा अधिक की है। इन दोनों रचनाओं का विस्तृत विश्लेषण हम इकाई में आगे के बिन्दुओं में करेंगे।

उपन्यास

धर्मवीर भारती ने मनोवैज्ञानिक किस्म के दो अनुभवपरक उपन्यास लिखे हैंरू श्गुनाहों का देवताश (1949) और श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश (1952) दोनों उपन्यास अपनी प्रकृति में एक दूसरे से भिन्न हैं। आइये भारती के दोनों उपन्यासों पर चर्चा करें।

गुनाहों के देवता–भारती के पहले उपन्यास गुनाहों का देवताश के बारे में प्रायरू विद्वानों का मत रहा है कि यह एक भावनात्मकता, भावुकता और उच्छ्वास से युक्त उपन्यास है। उसमें रोमानी प्रेम की कहानी कही गई है। कुछ विद्वान इस मत से सहमति नहीं रखते। जैसे डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार श्न इसमें भावनाओं की उड़ान है, न मनोविज्ञान का आग्रह है और न यथार्थ की नग्नता। फिर भी उसमें सब कुछ है और सब कुछ के . अतिरिक्त कुछ और भी जिसकी हम विवेचना नहीं कर पाते। और जो हमें बरबस आकर्षित करने में समर्थ है।श्श वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखा जाए तो भारती जी के इस उपन्यास में प्रेम को एक समग्र मानवीय व्यवहार के रूप में चित्रित किया गया है जो युवक–युवतियों के बीच का त्याग भावना से प्रेरित और वासना रहित प्रेम है। उपन्यास में चंदर सुधा को अपनी समस्त पवित्रता से प्रेम करता है, वासना उसके लिए गर्हित है और इस प्रकार वे दोनों रोमानी प्रेम के प्रवाह में बहते रहते हैं। एक दूसरे से प्रेम में होड़ करते हुएय ऊपर उठते हुए। फिर, सुधा का विवाह होता है।

चंदर खुशी–खुशी इस कार्य को संपन्न कराने में मदद करता है–यह सोचकर कि प्रेम तो इन सबसे ऊँची वस्तु है। परन्तु सुधा अपने चंदर से उखड़कर दूसरी जगह जीवित नहीं रह पाती। चंदर सोचता है कि सुधा पति के घर जाकर उसे भूल गई। वह उसे पत्र नहीं लिखता और ईसाई युवती पम्मी के आकर्षण में फंसकर वासनात्मक प्रेम (गुनाह!) में डूब जाता है। यहीं से प्रेम की यंत्रणा का प्रारंभ होता है। पम्मी चंदर को प्रेम के रहस्य को समझाती हैरू "शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र और स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पूजा। आत्मा की पूजा और शरीर की प्यास दोनों अभिन्न हैं। आत्मा अभिव्यक्ति शरीर से है, शरीर का संस्कार, शरीर का संतुलन आत्मा से है। जो आत्मा शरीर को अलग–अलग कर देता है वही मन के भयंकर तूफानों में उलझकर चूर चूर हो जाता है।पम्मी चंदर की सोच को संतुलन प्रदान करती है। अन्यथा चंदर का प्रेम स्वर्गस्थ दैविक प्रेम बना हुआ था। किंतु तब तक सुधा उसे छोड़ दूर जा चुकी होती श्गुनाहों

का देवताश मध्यवर्गीय प्रेम की कहानी है। इसके विषय में लेखक का मंतव्य स्पष्ट है ष्मेरी निगाह में तो समाज की वर्तमान मान्यताएँ और व्यवस्था एक बहुत बड़ा गुनाह है क्योंकि वह आधुनिक तरुण के स्वस्थ विकास की हत्या कर डालता है और नतीजा यह होता है कि हमारे राष्ट्र के युवक कभी अपने वैयक्तिक अन्तर्विकारों और उलझनों से उबरकर एक स्वस्थ–सामाजिक धरातल पर नहीं आ पाते...मैं ऐसी नैतिकता के खिलाफ विद्रोह करता हूँ। लेकिन उपन्यास के सम्पूर्ण पटल पर कोई विद्रोह नहीं मिलता। यह एक साधारण मध्यवित्त परिवार के युवायुवतियों के निष्पाप प्रेम की कहानी बनकर रह जाता है। जहाँ वासनात्मक उच्छृखंलता तो दूर ऐसा सोचना भी पाप सिद्ध होता है। इसलिए इस उपन्यास के कथानक में अधिकांशतरू भावनात्मक आलोड़न–बिलोड़न अधिक आया है और सुधा के विवाहोपरांत अपने पति के घर चले जाने के बाद प्रतिक्रिया स्वरूप चंदर का पम्मी के प्रेम में डूब जाना पाठक को अच्छा नहीं लगता।

कथाकार ने ऐसे वातावरण में अपने पात्रों का निर्माण किया है और घोषणा की है कि ये पात्र श्एक ओर समाज के शिकंजे से लड़ रहे हैं तो दूसरी ओर अपने मन की कमजोरी से ।श उपन्यास को पढ़ने के बाद लगता है कि ये पात्र समाज के शिकंजे से लड़ कम रहे हैं अपने अन्तर्द्वन्द्व के शिकंजे में फंसे हुए अधिक दिखाई देते हैं। इसलिए यह उपन्यास समाज से लड़ने के बजाय व्यक्तिकेन्द्रित भावुक मन की कहानी अधिक बन गया है। जिसमें चंदर एक काल्पनिक और स्वर्गिक नैतिकता के झोंके में सुधा के जीवन से खेलता है और उपन्यास सुधा और चंदर के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, शरीर और आत्मा के संघर्ष से आगे बढ़कर जीवन के ठोस धरातल का स्पर्श नहीं कर पाता। हालाँकि यहाँ भी श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश के समान उपन्यास में समाज और अर्थशास्त्र के महत्व की चर्चा हुई है। जैसेरू "अर्थशास्त्र वह पत्थर है जिस पर समाज के सारे भवन का बोझ है।ष पर यहाँ वह अर्थशास्त्र को उतना महत्व नहीं देता। समाज में उसके महत्व की चर्चा नहीं करता। बल्कि कथाकार कहता है कि षजिन्दगी सिर्फ आर्थिक पहलू तक सीमित नहीं और वह यह भी समझता था कि जीवन को सुधारने के लिए सिर्फ . धर्मवीर भारतीय का कथा साहित्य आर्थिक ढाँचा बदल देने भर की जरूरत नहीं है। उससे आगे भी बहुत सी चीजें हैं जिनसे और सूरज का सातवाँ घोड़ाश मिलकर जिन्दगी चलती है।ष इसलिए उपन्यास में कहा गया है कि इन सबके लिए आदमी का सुधार करना होगा। व्यक्ति का सुधार करना होगा। किंतु उपन्यास की कथा में जीवन को सुधारने या आदमी को बदलने वाली किसी घटना का उल्लेख नहीं किया गया है। न बाद में कहीं अर्थशास्त्र ही दिखाई देता है। यहाँ तक कि यगीन सामाजिक–राजनैतिक परिवेश में हो रही उथल–पथल. का संकेत तक नहीं मिलता। देश का विभाजन और शरणार्थियों जैसी र प्रसंगवश आ गई हैं। दरअसल, उक्त उपन्यास के केन्द्र में समाज या सामाजिक समस्याएँ हैं ही नहीं। केन्द्र में है व्यक्ति। चंदर और सुधा, उनका त्याग और उनका वासना रहित प्रेम–यही इस पूरे उपन्यास पर हावी है। देखा जाए तो, चंदर और सुधा, उनके जीवन की त्रासदी, सुधा के जीवन की समाप्ति इन सबके लिए चंदर और सुधा स्वयं जिम्मेदार हैं। लेकिन राजेन्द्र यादव के अनुसार इसका जिम्मेदार सिर्फ चंदर है। वे लिखते हैं श्गुनाहों का देवताश "व्यक्तिवादी उपन्यास है, क्योंकि उसमें व्यक्ति का चित्रण है, उसकी मनरूस्थितियों का वर्णन है उसकी भावनाओं के विकास–हास का आकलन है और वह व्यक्ति है चंद्रकुमार कपूर।ष अतरू अर्थ, अर्थशास्त्र, सुधार आदि श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश की तरह इसमें भी आरोपित हैं। .

उपन्यास का कथानक चंदर और सुधा के भावुकता पूर्ण प्रेम के इर्द–गिर्द ही घूमता है। लेखक उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, नारी और आत्मा के संघर्ष को ही अपने इस उपन्यास की कहानी में विन्यस्त करता है। चंदर और सुधा का प्रेम ऐसा आलौकिक दिखता है कि देवता भी शरमा जाएँ। भावनाओं का जाल इस तरह फैलाया जाता है कि कहानी ठोस वास्तविक धरातल पर लौट ही नहीं पाती। पहले चंदर अपने निष्पाप प्रेम की उमंग में सुधा का विवाह किसी दूसरे से करा देता है फिर उसे भूलने के लिए पम्मी के वासनात्मक प्रेम में डूब जाता है। यहाँ भारती अज्ञेय की तरह वासना और प्रेम को दो अलग हिस्सों में बाँटकर देखते हैं। किंतु कथानायक चंदर शीघ्र ही सुधा के दुरूखद अंत के बाद ही साधारण वास्तविक दुनिया में लौट आता है। सुधा अपने अर्द्वन्द्व में अपेक्षाकृत स्पष्ट है। पर उसकी कमजोरी यह है कि अपनी भावनाओं को उजागर नहीं कर पाती। उपन्यास में एक स्थल पर अपनी इस उलझन को व्यक्त करते हुए चंदर से कहती हैरू "पापा कहते हैं ब्याह करो, पम्मी कहती है मत करो, गेसू कहती है तुम प्यार करती । हो और तुम.....तुम भी कुछ भी नहीं कहते। तुम मुझे इस नरक में बरसों से सुलगते देख रहे हो और बजाय इसके कि तुम कुछ कहो, तुमने खुद इस भट्टी में ढकेल दिया।डॉ. . रामस्वरूप चतुर्वेदी इस चरित्र के अन्तर्विरोधों, उनके प्रेम के स्वरूप की चर्चा करते हुए। स्वयं अन्तर्विरोधों के शिकार हो जाते हैं।

वे कहते हैंरू "यह प्रेम ऐसा सरल, शुद्ध और निरूस्वार्थ है कि उसमें सेक्स की झलक भी नहीं दिखाई देती और दिखाई भी कैसे दे क्योंकि सैक्स तो वहीं उभरता है जहाँ कि पुरुष और स्त्री सामाजिक विषमता के फलस्वरूप मिल न पाते हों। किन्तु फिर भी अपने कोरे आदर्शवाद के कारण चंदर अपने जीवन दर्शन में असफल रहता है।श प्रश्न है कि क्या सामाजिक विषमता के बिना स्त्री–पुरुष में प्रेम नहीं हो सकता या इसका सारा दोष चंदर के कोरे आदर्शवाद का है कि वह अपनी भावनाओं को समझ नहीं पाया अथवा सुधा के पिता के उपकारों के बोझ के कारण अपने प्रेम की अभिव्यक्ति नहीं कर पाया। अन्यथा ऐसा मयों होता है कि वह सुधा के विवाह, के बाद पम्मी के प्रेम में आकंठ डूब जाता है? दरअसल सुधा के चले जाने के बाद उसके कोरे आदर्शवाद को धक्का लगता है तथा उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह यह कदम उठाता है। यह उसका स्वाभाविक कदम नहीं है। वह गेसू के सहारे इस दलदल से बाहर निकल आता है और अपनी गलती का अहसास भी करने लगता है। चंदर सोचने लगता है कि प्रेम और वासना एक सिक्के के दो पहलू हैं। यहाँ कथनीय है कि कथाकार भारती प्रेम के विषय में चाहे जो भी विचार व्यक्त करें वह ठोस वास्तविक प्रेम की बजाय भावोच्छ्वास वाले प्रेम में अधिक रमते रहे हैं, यही कारण है कि चंदर में भावुकता और त्याग के बल पर देवता बनने की चाह अधिक रही हैय वास्तविक मनुष्य बनने की नहीं। कारण, मनुष्य बनने में द्वन्द्व और संघर्ष के साथ–साथ साहस की आवश्यकता होती है, जिसे चंदर उपन्यास के अंत में समझ और जान पाता है। भावोच्छ्वास वाला यह प्रेम 'सूरज का सातवाँ घोड़ाश में भी प्रायरू प्रकट हुआ है।

गुनाहों का देवता में सर्वाधिक शक्तिशाली पात्र सुधा और चंदर ही हैं। इसमें चंदर का चरित्र अधिक उभरा हुआ है। हालांकि द्वन्द्व ग्रस्तता की रेखाएँ सुधा में भी कम नहीं उभरी हैं। फिर भी त्याग और निष्पाप प्रेम को दर्शाते हुए चंदर सुधा के जीवन से खेलता है। वह अपने प्रेम को अपने से अलग करके भी फलते–फूलते देखना चाहता है। परन्तु वह अपने इस परीक्षण में असफल रहता है और उसका बहुत बड़ा मूल्य चुकाता है। उसका यह भोगना कुछ भी नहीं है क्योंकि सुधा को तो जीवन का मूल्य चुकाना पड़ता है। वह . एक जगह से उखडकर दसरी जगह बस नहीं पाती। फिर भी वह इसमें स्त्री का देखता है। कहता हैरू ष्औरत बड़ी बातें करेगी, आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक का मिलनय लेकिन उसकी सिद्धि सिर्फ शरीर में है।ष स्पष्ट ही चंदर के व्यक्तित्व में एक सिरे पर प्यार का एक स्वरूप है तो दूसरे सिरे पर उसके विपरीत एकदम दूसरा। वह अन्तर्मुखी, घनघोर व्यक्तिवादी और अहंकारी चरित्र है जिसे एकदम अव्यावहारिक भी कहा जा सकता है। सुधा चंदर का ही अंश है। उपन्यास में कहा भी गया है। चंदर सूर्य है जिसमें सुधा की चाँदनी चमक रही है। उसके व्यक्तित्व की छाया लेकर वह सशक्त हो जाती है तो उस से दूर होकर उसकी चाँदनी छाया में बदल जाती है। वह रुग्ण हो जाती है और क्रमशरू खत्म हो जाती है। उसके खत्म होने में चंदर का–उसके प्रेम के परीक्षण का ही हाथ है। वह अपने प्रेम के माध्यम से सुधा के जीवन से खेलता है। उसे नहीं पता था कि सुधा का प्यार, विश्वास ही उसकी आत्मा थी, जिसके बिना वह शरीर मात्र रह जाएगा। यह परीक्षण और असफलता चंदर के व्यक्तित्व का सर्वाधिक कमजोर अंश है।

चंदर और सुधा के बाद गेसू, बिनती, पम्मी और डॉ. शुक्ल के चरित्रों के विकास पर कथाकार का ध्यान गया है। इनमें सर्वाधिक सजीव और विश्वसनीय चरित्र गेसू और बिनती के हैं। गेसू शायर होते हुए भी इस दुनिया की थी और सुधा शायर न होते हुए भी कल्पना लोक की थी।श और यही अंतर बिनती और सुधा में दिखाया गया है। षबिनती व्यावहारिक, कितनी यथार्थ, कितनी संयत और सुधा कितनी आदर्श, कितनी कल्पनामयी, कितनी सूक्ष्म, कितनी ऊँची, कितनी सुकुमार और पवित्र।ष इन दोनों कथनों में दोनों चरित्रों की रेखाएँ स्पष्टतरू प्रकट हो गई हैं। नारी पात्रों में पम्मी को सबसे अलग दिखाया गया है। वह ऐसा चरित्र है जो साफ बातें करता है।

शुद्ध तर्क के धरातल से। वह व्यवहार कुशल पात्र के रूप में चित्रित है जो चंदर को शरीर के आकर्षण का महत्व समझाती है। पर यह कहना कि वह चंदर को वासना में उलझाकर रखना चाहती है–अनुचित है। वह चंदर के लिए सिगरेट पीना छोड़ती है। कविता में रुचि लेने लगती है। वह मानवमन की अच्छी जानकार है। पम्मी चंदर के स्पर्श से जान जाती है कि चंदर में अब आवेग की आग बझ गई है। वह चंदर को कभी पा नहीं सकेगी। वह इसके लिए आगे प्रयास जारी नहीं रखती। फिर भी पम्मी को धूर्त या दुष्ट चरित्र नहीं कहा जा सकता। अन्यथा वह चंदर को यह सलाह नहीं देतीरू षकिसी अच्छी–सी सीधी सादी हिंदू लड़की से अपना विवाह कर लेना। किसी बहुत बौद्धिक लड़की जो तुम्हें

प्यार करने का दम भरती हो, उसके फंदे, में न फँसना कपूर! मैं उम्र और अनुभव दोनों में तुमसे बड़ी हूँ।ष किंतु चंदर न अपने को जान सका और न वक्त पर साहस दिखाकर सुधा के जीवन को बचा सका। वह एक ऐसा मध्यवर्गीय चरित्र है जो अपनी कमजोरी के कारण जीवन में किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाता।

वातावरण निर्माण एवं वर्णन शैली–शिल्प की दृष्टि से श्गुनाहों का देवताश उपन्यास लेखक की प्रारंभिक रचना होते हुए भी अप्रतिम है। संभवतरू उसका एक कारण उसकी अभिव्यंजना प्रधान भाषा है। लेखक जब किसी चीज का वर्णन करने लगता है तो वह उसे जीवंत बना देता है। चंदर–सुधा. गेस–सधा के प्रारंभिक वार्तालाप, जहाँ इनका रूठना–झगड़ना दिखाया गया है, वहाँ भारती की कला अपने उत्कर्ष पर पहुँची दिखाई देती है। उपन्यास श्स्वप्नमयी मधुर कविताश बन जाता है। सुधा के विवाह का वर्णन मार्मिक बन पड़ा है– "लेकिन यह जिन्दगी भी, जहाँ प्यार हार जाता है, मुस्कानें हार जाती हैं, आँसू हार जाते हैं.....तश्तरी, प्याले, कुल्हड़, पत्तलें, कालीनें, दरियाँ और बाजे जीत जाते हैं.....और जहाँ दो आँसुओं में डूबते हुए व्यक्तियों की पुकार शहनाइयों की आवाज में डूब जाती है।श्श स्पष्ट है कि उक्त उपन्यास की रसमयता उसकी भाषा–शैली के कारण है। ये ऐसे वर्णन हैं जो उपन्यास को मर्मस्पर्शी बना देते हैं। जगह–जगह नाटकीयता का विधान किया गया है। इस उपन्यास की शैली पर छायावाद का प्रभाव देखा जा सकता है। ष्उसकी हँसी में दूधिया बचपन छलक उठता है।श्श या "सुधा बाँस की टहनी की तरह लचक कर बोलती है।आदि इसके उदाहरण हैं। ये उपन्यास को कवित्वपूर्ण और मधुर बनाते हैं।

भारती को फूलों से विशेष प्रेम रहा है। उदाहरण के लिए देखेंरू "सुधा भी बड़ी प्यारी। बड़ी खूबसूरत। खासतौर से उसकी पलकें तो अपराजिता के फूलों को मात करती थीं। और थी इतनी गुदकारी कि कहीं पर दबा दो तो फूल लिल जाएं। मूंगिया होठों पर न जाने कैसा अछूता गुलाब मुसकराता था और बाहें तो जैसे बेले की पंखुरियों की बनी हों।ष ऐसा नहीं है कि सारे उपन्यास में एक ही प्रकार की भाषा–शैली अपनाई गई है, वह भावानुरूप बदल भी जाती है। कुछ स्थल गद्यकाव्य जैसे बन गए हैं, तो कहीं शैली छलकती हुई सी दिखाई देती है। मोटे रूप में देखें तो उक्त उपन्यास में भाषा के दो मुख्य रूप मिलते हैं। एक यथार्थ की मार से बनी कठोर और निर्मम भाषाय तो दूसरी ओर, प्रणय के रंगों से सराबोर उन्मादक भाषा। कथाकार ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को मनुष्य और उसके भावों से जोड़कर अनन्य चित्र प्रस्तुत किए हैं।

इस प्रकार जीवन की कोमलता, अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ इस उपन्यास में साकार हो उठी हैंय जिसमें भावनात्मकता का उफान है तो रोमानी कल्पनाओं से उपन्यास सतह से ऊपर उठ जाता है। यही पक्ष उपन्यास को सतही रोमानी प्रेम कहानी से आगे ले जाता हैय जो न रूढ़िगत प्रेमगाथा कहता है न विद्रोहात्मक, किन्तु वह त्रासद अनुभव अवश्य बन जाता सूरज का सातवाँ घोड़ा–सूरज का सातवाँ घोड़ाश (1952) भारती का गुनाहों का देवताश के बाद दूसरा उपन्यास है। इसके विषय में उपन्यासकार ने शनिवेदनश में लिखा है कि । ष्दोनों कृतियों में कालयुग का अंतर पड़ने के अलावा उन बिंदुओं में भी अंतर आ गया है जिन पर होकर मैंने समस्या का विश्लेषण किया है। आइए सबसे पहले उन बिंदओं की ही पड़ताल की जाए जिन्हें लेकर लेखक ने श्समस्या का विश्लेषणश किया है। दरअसल, श्गुनाहों का देवताश उपन्यास एक भावुक प्रेम कहानी है, जिसमें समाज और उसकी समस्याएँ उतनी मुखरित नहीं हुई हैं जबकि श्सूरज का सातवाँ घोड़ा में निम्नमध्यवर्गीय जनजीवन की धड़कन साफ सुनाई देती है। फिर, मा र्सवाद की छौंक उस उपन्यास में नहीं थी।

इस उपन्यास के कथाविधान में सामाजिक परम्परा और आर्थिक व्यवस्था के बीच जो जीवन जिया जा रहा है, उसकी समस्याओं को लेखक ने अपने सृजन के केन्द्र में रखा है। इस सिलसिले में वह अपने समाज के संदर्भ में मार्क्सवादी चिंतकों की भूमिका से भी सहमति नहीं रखता। भारती श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश उपन्यास के शनिवेदनश में इसका उल्लेख करते हैं: "पिछले तीन चार वर्षों में मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे जितनी शांति, जितना बल और जितनी आशा मिली है, हिंदी की मार्क्सवादी समीक्षा और चिंतन से उतनी ही निराशा और असंतोष।ष्उक्त कथन की आरंभिक स्थापना भारती के इस उपन्यास में कहीं पुष्ट नहीं होती। माणिक मुल्ला से लेकर तांगेवाले के सम्बंध में टीपी गई भारती की टिप्पणियाँ मार्क्सवाद का मखौल ही लगती हैं, इसे सूरज का सातवाँ घोड़ाश में लेखकीय दृष्टि पर विचार करते हुए

विशेष रूप से स्पष्ट किया जाएगा। संभवतरू इसीलिए उसकी कथा सृष्टि में मार्क्सवाद की तर्कसंगति की अपेक्षा रोमानी भावबोध अधिक उभरता दिखाई देता है। आइए, सबसे पहले इस उपन्यास की कथा पर दृष्टि डालें।

इस उपन्यास में माणिक मुल्ला आपबीती के रूप में निम्नमध्यवर्गीय परिवारों की कहानी अपने नौजवान साथियों को सुनाता है। ये निम्न मध्यवर्गीय जीवन जी रहे परिवारों के हृदय–द्रावक किस्से हैं, जो पाठक को झिंझोड़ते हैं। इन छोटी–छोटी कहानियों को श्माणिक मल्लाश कथा चक्र के अन्तर्गत निष्कर्षवादी कथाओं के रूप में कहा गया लघु उपन्यास कहा जा सकता है।

इस उपन्यास में जमुना, लिली और सत्ती के जीवन से जुड़ी कहानियाँ वर्णित हैं, जिन्हें माणिक मुल्ला ने. सातवीं दोपहर की कहानी में सूरज के मिथक के साथ जोड़ दिया है। इन सभी कहानियों में या इस उपन्यास में साधारण युवक–युवतियों के आकांक्षित प्रेम की कहानी कही गई है, जिसे वे अंत तक प्राप्त नहीं कर पाते। इन प्रेम कहानियों के माध्यम से कथाकार ने निम्नमध्यवर्गीय जनजीवन की त्रासद स्थितियों, उनके घुटन भरे जीवन, उसमें जैसे–तैसे जिन्दा रहने की विवशता के अनेक चित्र खींचे हैं। इसका कारण लेखक की दृष्टि में वे सामाजिक–आर्थिक स्थितियाँ हैं जिनके बीच जीवन जिया जा रहा है। माणिक मुल्ला के साक्ष्य से कथाकार कहता है कि "जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूँ तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब प्रभाव डालता है कि.मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं और हम जैसे लोग जो न उच्चवर्ग के हैं, न निम्नवर्ग के, जिनके यहाँ रूढ़ियाँ, परम्पराएँ, मर्यादाएँ भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सबों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यंत्र मात्र रह जाते हैं। हमारे अंदर उदार और ऊँचे सपने खत्म हो जाते हैं और एक अजब–सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है।

दरअसल, होता यह है कि जब हम परिस्थितियों के बहाव में बहते चले जाते हैं तथा उसके विरुद्ध खड़े होने का साहस नहीं जुटा पाते तो उस व्यवस्था का पुर्जा बनकर उसी को अपनी नियति मान लेते हैं। कथाकार को साधारण व्यक्ति के इस व्यवस्था के यंत्र बन जाने का अहसास ही नहीं, बेचौनी भी है लेकिन वह कथानक में चरितार्थ होती नहीं दीखती बल्कि विचार के धरातल पर आकर ही समाप्त हो जाती है। विरोध या विद्रोह का साहस किसी में नहीं मिलता।

जिसमें इसका जरा–सा अंश भी आ गया है, वह घटना या पात्र उपन्यास में महत्वपूर्ण बन गया है। इस दृष्टि से सत्ती का प्रसंग द्रष्टव्य है। सत्ती का माणिक के प्रति प्रेम सामाजिक–आर्थिक परिवेश के अनुशासन को नहीं मानता। हालाँकि मध्यवर्गीय व्यक्ति माणिक इस प्रेम के लिए भी चारों ओर हानि–लाभ की गणना करता है। अंततः सत्ती को धोखा दे देता है। यानी निम्नवर्गीय सत्ती प्रेम के लिए आर्थिक अनुशासन को महत्वपूर्ण नहीं मानती, मध्यवर्गीय माणिक मानता है। फिर भी विचार के धरातल पर अपने पूर्व वक्तव्य का संशोधन करते हुए वह आगे कहता हैरू "यह सच है कि प्रेम आर्थिक स्थितियों से अनुशासित होता है, लेकिन मैंने जोश में कह दिया था कि प्रेम आर्थिक निर्भरता का ही दूसरा नाम है यह केवल आंशिक सत्य है।

इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि प्यार.....आत्मा की गहराइयों में सोये हुए सौन्दर्य के संगीत को जगा देता है, हममें अजब सी पवित्रता, नैतिक निष्ठा और प्रकाश भर देता है आदि–आदि। लेकिन.....हम सब परंपराओं, सामाजिक परिस्थितियों, झूठे बंधनों में इस तरह कसे हुए हैं कि उसे सामाजिक स्तर पर ग्रहण नहीं कर पाते, उसके लिए संघर्ष नहीं कर पाते और बाद में अपनी कायरता और विवशताओं। पर सुनहरा पानी फेर कर उसे चमकाने की कोशिश करते रहते हैं।.....और जो भी भावना हमारे सामाजिक जीवन की खाद नहीं बन पाती, जिन्दगी उसे झाड़–झंखाड़ की तरह उखाड़ फैकती है।श्श श्सूरज का सातवाँ घोड़ा के कथानक में इन्हीं मानवीय संबंधों के विरोधी रूपों और तनावों को उसकी कथा में बुनने का प्रयास किया गया है। इन कहानियों के माध्यम से साधारण जन–जीवन की जर्जर रूढिबद्धता, उनके मानसिक विधान की सीमा से पैदा होने वाले कष्टों का विविध आयामी चित्रण–इस उपन्यास को नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। साथ ही स्वप्न, यथार्थ और मिथक का उपन्यास के कथानक में इस प्रकार का संतुलन बनाया गया है कि हिन्दी उपन्यासों में यह एक प्रयोगधर्मी उपन्यास बन गया है।

इस उपन्यास में पात्रों की गतिशीलता से कथानक का निर्माण होता है। पहली कहानी की नायिका जमुना रो–धोकर माता–पिता को अपने से नीचे गोत वाले लड़के तन्ना से विवाह के लिए मना लेती है। किन्तु दोनों परिवारों के जातिगत अहंकार उनके जीवन को नष्ट कर देते हैं तथा जमुना को एक तिहाजू वृद्ध जमींदार से विवाह करने के लिए विवश होना पड़ता है। उपन्यास की दूसरी कहानी की नायिका लिली नई शिक्षा के आलोक से स्वतंत्र व्यक्तित्व धारण करने वाली रोमानी सपनों से युक्त है। उसके सपने जीवन में साकार नहीं हो पाते। वह टूट जाती है तथा अपने पति तन्ना को, उसके भाग्य पर छोड़कर अपनी माँ के पास वापिस लौट आती है। तीसरी मेहनत–मशक्कत करने वाली सत्ती का अनोखा चित्र रखा गया है। जो न लिली के समान पढ़ी–लिखी है और न अनपढ़ दमित मन वाली जमुना . के समान है। वह वर्जनामुक्त सहज–स्वस्थ ममतामयी युवती है। हमदर्दी चाहती है और हमदर्दी देती है। वह स्वाधीन और साहसी लड़की है, "जो मध्यवर्ग की मर्यादाओं के शीशे के पीछे सजी हुई गुड़िया की तरह बेजान और खोखली न थी।ष्ष्वह ऐसी लड़की है जो सृजन और श्रम में सामाजिक जीवन में उचित भाग लेती हो, अपना उचित देय देती है।श्श इस प्रकार कथाकार ने समाज में विद्यमान अनेक प्रकार के नारी चरित्रों की सृष्टि की है। किन्तु पैतृक व्यवस्था, जाति–पाँति के बंधन, सामाजिक रूढ़ियों और वर्ण–वर्ग के आधार पर सभी नारी चरित्र किसी न किसी प्रकार के शोषण की शिकार बनती हैं। सत्ती के . चरित्रगत विकास से प्रतीत होता था कि वह एक नए प्रकार के विद्रोही चरित्र का स्वरूप ग्रहण करेगी किंतु मध्यवर्ग की स्वार्थपरता तथा पुरुषों के वर्चस्व वाले समाज के सामने वह भी हार जाती है और जीवन भर भीख माँगकर नारकीय जीवन जीने के लिए विवश होती है।

लेखक किसी एक पात्र से अपना पूरा तादात्म्य नहीं दिखाता। वह किसी पात्र में अपनी कोई झलक दिखा देता है, किसी में कोई। जैसे प्रकाश नामक पात्र में उसका चिंतक रूप उभरता है तो माणिक मुल्ला में उनका सर्जक रूप। पर किसी एक पात्र में उसका समग्र प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। माणिक की पहचान इसी में है कि वह नितनवीन किस्से सुना सकता है, सबको बाँधे रह सकता है या सिद्धांत छाँट सकता है। वह जमुना, लिली और सत्ती से प्रेम करता है पर उसके परिणामों को सोचकर संकुचित हो जाता है। हाथ खींच लेता है। "फलस्वरूप उनके विचारों में अन्तर्विरोध, ढोंग, खयाली बहकावे और मिथ्या दर्शन दिखलाई देते हैं।

इन सब पात्रों की विशेषताएँ इनके कामों से उभरती हैं। पर इस उपन्यास में ऐसा कुछ नहीं है जो पहले नहीं कहा गया। बस, कहने का ढंग या शिल्प प्रयोग तथा उसकी अभिनवता पर विशेष बल है।

श्सूरज का सातवाँ घोड़ाश के कथाशिल्प को इस प्रकार सँजोया गया है कि वह सपाट प्रेम कहानी न होकर उसके माध्यम से निम्न मध्यमवर्गीय जीवन की सच्ची तस्वीर बन जाता श है। शिल्प कुछ इस प्रकार रखा गया है कि उपन्यास में आई भिन्न–भिन्न कहानियाँ एक कहानी लगें और कथाकार इन कहानियों के माध्यम से निम्न मध्यवर्ग के जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर कर सके। दरअसल, कथाकार का लक्ष्य हैरू निम्न मध्यवर्ग के समूचे जीवनरूपों का परिचय देना। इसे उसने सूरज और उसके रथ में जुते सात घोड़ों की दयनीय हालत के माध्यम से एक सूत्र में बाँध दिया है।

संभवत: कथाकार यह सोचता है कि इस वर्ग का जीवन इसी प्रकार चलना है। पर इसका यह अर्थ नहीं की जीवन में आशा की कोई किरण नहीं। कथाकार का मानना हैरू ष्सूर्य के रथ को आगे बढ़ना ही है। हुआ यह है कि हमारे वर्ग विगलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अँधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट–फूट गया है और बेचारे घोड़ों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गई है तो किसी का पैर उखड़ गया है, तो कोई सूखकर ठठरी हो गया है, तो किसी के खुर घायल हो गए हैं। अब बचा है सिर्फ एक घोड़ा जिसके पंख अब भी साबित हैं, जो सीना ताने गरदन उठाए चल रहा है। वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें निष्पाप बच्चों का घोड़ा, जिनकी जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन–चौन की होगी ज्यादा पवित्रता की होगी, उसमें ज्यादा प्रभाव होगा, ज्यादा अमृत होगा।.....यद्यपि बाकी छह घोड़े दुर्बल, रक्तहीन और विकलांग हैं पर सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान है और अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी होगी। क्या यह कोरा आशावाद है? क्या उक्त उपन्यास के शिल्प–विधान से यह आशा–आस्था का स्वर तर्कसंगत रूप से उभरता है? वस्तुतरू यह आस्था और विश्वास उपन्यास की अन्तर्वस्तु या उसकी संरचना से कहीं भी व्यक्त या संकेतित नहीं हुआ है। अतरू सातवें घोड़े के रूप में इसे नितान्त आरोपित माना जा सकता है।

निष्कर्ष

सूरज का सातवाँ घोड़ा धर्मवीर भारती का प्रसिद्ध उपन्यास है। धर्मवीर भारती की इस लघु औपन्यासिक रचना में हितोपदेश और पंचतंत्रवाली शैली में ७ दोपहरी में कही गई कहानियों के रूप में एक उपन्यास निर्मित किया गया है। यह पुस्तक के रूप में भारतीय ज्ञानपीठ सेइसे लघु उपन्यास की संज्ञा दी गयी है। कथानक की बुनावट उपन्यास की विषयदृवस्तु को नए आयाम प्रदान करती है। 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' भी भारत–ईरान की प्राचीन शैलियों से प्रभावित माना जाता है। लेकिन, पुरानी किस्सागोई का यह तरीका दृअलिफलैला, पंचतंत्र, दशकुमारचरित अथवा कथासरित्सागर दृ 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की ऊपरी त्वचा मात्र है, इसे कथानक का बुनियादी ढाँचा नहीं माना जा सकता। एक दूसरी शैली भी इसमें परिलक्षित की जा सकती है– वह है, वीरगाथाओं या अन्य महाकाव्यों जैसी शैली, जिसमें रचनाकार अपनी रचनाओं का रचयिता ही नहीं वरन् घटनाओं के बीच स्वयं भी उपस्थित है। वह भोक्ता और रचयिता दोनों है। इस प्रकार रचना तटस्थ होने, निजी अनुभूति को सार्वजनिक अनुभव में तब्दील करने का दायित्व बन जाती है। 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चंदवरदायी इसके महत्त्वपूर्ण् चरित्र भी हैं, ठीक उसी तरह जैसे वाल्मीकि और तुलसी खुद को अपनी रचनाओं में उपस्थित कर देते हैं या कि संजय महाभारत के घटनाचक्र में मौजूद है।

सन्दर्भ

1. अमर किरदारों को बुनने और अद्भुत लेखकों को गढ़ने वाला साहित्यकार संपादक
2. धर्मवीर भारती के उपन्यास 'गुनाहों का देवता' की समीक्षा
3. धर्मवीर भारती का आधिकारिक जालघर
4. धर्मवीर भारती ग्रन्थावली, भाग–६ (गूगल पुस्तक य लेखक – चन्द्रकान्त बंदिवादेकर)
5. साहित्य विचार और स्मृति (गूगल पुस्तक य लेखकद्वय – पुष्पा भारती, धर्मवीर भारती)
6. लेखन पर पाबंदी नामंजूर थी धर्मवीर भारती को (प्रभासाक्षी)
7. आर्य जगत के सुप्रसिद्घ विद्वान डॉ.धर्मवीर का लघु जीवनचरित
8. धर्मवीर भारती की कविताएं